प्रभु पर दृष्टि

Theodor Monod

प्रभु पर दृष्टि

बाइबिल आधारित आत्मिक संदेश

हमारे अन्य प्रकाशन

1. उत्पत्ति और उद्धार की कहानी
2. आत्मिक जन्म
3. प्रभु-ज्ञान और प्रभु-भक्ति
4. विश्वासी और दाम्पत्य जीवन
5. क्रूस और विश्वासी
6. आध्यात्मिक विकास के सिद्धान्त
7. सुदृढ़ आधार (तीन खण्ड)
8. प्रेरितों के काम (एक अध्ययन)
9. प्रभु के प्यासे

श्री थियोडोर मोनॉड के एक
सौ से भी अधिक वर्षों पूर्व के
उस आध्यात्मिक संदेश पर
आधारित जो अपने महत्व एवं
उपयोगिता के कारण, अनेक
भाषाओं में, बारम्बार
प्रकाशित हो चुका है.

PRABHU PAR DRISHTI

This Hindi booklet has been published by the Fellowship Bible Church, Middle Road, Winchester-22655, VA. (U.S.A.). The English version "Looking unto Jesus" (Theodor Monod) has been published by the Bible Lighthouse Press, Sare, PA. 18840-0099 (U.S.A.)

First Hindi Edition : May 2001

श्री थियोडोर मोनॉड (Theodor Monod) का जन्म फ्राँस की राजधानी, पैरिस में सन् 1836 में हुआ था। वह फ्राँसीसी भाषा के अपने ज्ञान तथा अपनी गहन आध्यात्मिकता के लिए सुप्रसिद्ध थे। उन्होंने अनेक आराधनापूर्ण भजनों की भी रचना की। इस पुस्तिका का संदेश मूलतः थियोडोर मोनॉड द्वारा फ्राँसीसी भाषा में लिखा गया था, जिसे हेलेन विलिस (Helen Willis) ने अंग्रेजी भाषा में "लुकिंग अन्टू ज़ीज़स" (Looking unto Jesus) नामक पुस्तिका के रूप में प्रस्तुत किया है। यह हिन्दी संस्करण हेलेन विलिस द्वारा किये गये अंग्रेजी रूपान्तर पर आधारित है।

इस पुस्तिका का सम्पूर्ण संदेश पवित्रशास्त्र बाइबिल के इस छोटे से वाक्यांश पर केन्द्रित है जिसमें ख्रिस्तीय विश्वासी के सम्पूर्ण आध्यात्मिक जीवन का रहस्य पाया जाता है - *"..यीशु की ओर अपनी दृष्टि लगाए रहें"* (इब्रा० 12:2)।

"...विश्वास के कर्ता और सिद्ध करने वाले यीशु की ओर अपनी दृष्टि लगाए रहें..."।

पवित्रशास्त्र

हमें पवित्रशास्त्र बाइबिल में प्रभु की ओर दृष्टि लगाना सीखना है। क्योंकि पवित्रशास्त्र से ही हमें यह ज्ञान प्राप्त होता है कि प्रभु कौन है, उसने हमारे लिए क्या किया है, वह हमें क्या देता है और वह हमसे क्या चाहता है। इस प्रकार उसके जीवन-स्वभाव के द्वारा हमारे कार्य-व्यवहार के लिए सर्वोत्तम आदर्श मिलता है, उसकी शिक्षाओं में हमारे लिए दिशा-निर्देश मिलते हैं और उसके उपदेशों में हमारे आत्मिक जीवन के नियम मिलते हैं, और उसकी प्रतिज्ञाएं ही हमारे जीवन का आधार हैं तथा उसके व्यक्तित्व एवं कार्य में हमारे आत्मा की प्रत्येक आवश्यकता की पूर्ण संतुष्टि का पूरा-पूरा प्रबन्ध है।

क्रूसित प्रभु

हमें अपनी दृष्टि को क्रूस पर बलिदान हुए प्रभु यीशु पर ही केन्द्रित रखना है, ताकि उसके द्वारा बहाए गए लहू में प्राप्त अपने छुटकारे, पाप-क्षमा और अपनी शान्ति को समझें।

पुनर्जीवित प्रभु

हमें तो उस प्रभु की ओर ही निरन्तर देखते रहना सीखना है जो मृतकों में से पुनः जीवित हो उठा; जिससे कि प्रभु यीशु में पायी जाने वाली उस एकमात्र

धार्मिकता को अपनायें जो हमें धर्मी बनाती है, और हमारी समस्त अयोग्यताओं के बावजूद प्रभु यीशु के नाम में, निर्भीकतापूर्वक उस पिता परमेश्वर की समीपता में आने की अनुमति देती है जो उसका तथा हमारा भी पिता परमेश्वर है।

महिमान्वित प्रभु

हमें उस प्रभु यीशु की ओर ही अपनी दृष्टि लगाए रहना है जो महिमा में उठा लिया गया है। तब हम अपने प्रभु यीशु को उस स्वर्गिक सहायक व मध्यस्थ के रूप में जान-समझ सकेंगे जो अपनी दयापूर्ण विनती-प्रार्थना के द्वारा हमारे जीवन में अपने उद्धार के कार्य को पूरा करने में लगा है (प. यूह. 2:1), और वर्तमान समय में भी हमारे लिए परमेश्वर के समक्ष उपस्थित है (इब्रा. 1:24)। वह ऐसा राजकीय याजक, और निर्दोष बलि है जो हमारे द्वारा अर्पित समस्त वस्तुओं का दोष अपने ऊपर उठाए हुए है (निर्ग. 28:38)।

पवित्र आत्मा द्वारा प्रकाशित प्रभु

पवित्र आत्मा द्वारा प्रकट किए गए उस प्रभु की ओर ही देखते रहना है जिससे हमारी अन्तरात्मा में लगे पाप के सारे दाग़ उसके साथ निरन्तर संगति के द्वारा धुल जाते हैं, हमारी अन्धकारमय आत्मा प्रकाशित हो जाती है

तथा हमारी विद्रोही इच्छा का परिवर्तन हो जाता है। और इस प्रकार परमेश्वर के द्वारा हम इस योग्य बनाए जाते हैं कि संसार एवं शैतान के सभी आक्रमणों पर सामर्थ्य के स्रोत प्रभु यीशु की शक्ति में विजय प्राप्त कर सकें और इनकी सारी हिंसा का प्रतिरोध (सहन) कर सकें एवं सच्ची सद्‌बुद्धि के स्रोत प्रभु यीशु के द्वारा शैतान की समस्त धूर्तातापूर्ण युक्तियों पर विजयी हो सकें। इन सब बातों में प्रभु यीशु मसीह की दयापूर्ण सहानुभूति ही हमें संभालती है अर्थात् वही हमारा सम्बल एवं सहारा है जो सभी प्रकार की परीक्षाओं से गुजरते हुए भी उनमें नहीं फंसा।

पश्चाताप प्रदान करने वाला प्रभु

वही हमें पाप से मन फिराव तथा पापों की क्षमा प्रदान करता है (प्रेरित. 5:13); क्योंकि वही हमें हमारे पापों को पहिचानने एवं उनके प्रति लज्जित होने, पापों को स्वीकार करने तथा उन्हें त्यागने के लिए ईश्वरीय अनुग्रह प्रदान करता है। अतः पश्चाताप प्रदान करने वाले प्रभु यीशु की ओर ही देखते रहना है।

ईश्वरीय कार्य-दायित्व

परमेश्वर की ओर से प्राप्त होने वाले कार्य-दायित्व के लिए भी प्रभु यीशु की ओर देखते रहना है। उसके द्वारा सौंपे जाने वाले दैनिक कार्य एवं क्रूस को,

उसके उस पर्याप्त अनुग्रह के साथ प्राप्त करने के लिए भी प्रभु यीशु की ओर ही देखते रहना है जो उसके द्वारा दिए गये क्रूस को ढोने तथा उसके द्वारा दिए गये कार्य को पूरा करने के लिए पर्याप्त है। उसका यह अनुग्रह हमें उसके धैर्य के साथ धैर्यवान, उसकी क्रियाशीलता के साथ क्रियाशील तथा उसके प्रेम के साथ प्रेमी बनाता है। उसका अनुग्रह कभी यह नहीं पूछता कि 'मैं किस कार्य के लायक हूं?' इसके बजाय उसका अनुग्रह यह पूछता है कि 'भला वह प्रभु किस कार्य को करने में समर्थ नहीं है'? उसका अनुग्रह उसकी उस सामर्थ्य की प्रतीक्षा करता है, जो हमारी दुर्बलता में ही पूर्णतः प्रकट होती है (दू. कुरि. 12:9)।

अहं से परे

हमें अपने अहं से दूर होने तथा अपने आप को भूल जाने हेतु भी प्रभु यीशु पर ही दृष्टि लगाए रहना है, ताकि उसके मुख के प्रकाश से हमारा अहंकार दूर हो जाए; नतीजतन हमारा आनन्द पवित्र हो और हमारा शोक नियंत्रित हो, जिससे कि वह जब चाहे तब हमें नीचे गिराए और जब चाहे तब अर्थात अपने समय पर ऊंचा उठाए - हाँ जब चाहे तब वह हमें कष्ट दे और जब चाहे तब सुख, और जब चाहे तब हमारा सब कुछ ले ले और जब चाहे तब समृद्ध करे; ताकि वह हमें प्रार्थना करना सिखाए और

हमारी प्रार्थनाओं का अपनी इच्छानुसार जवाब दे; जिससे कि हमें संसार में छोड़ते हुए भी वह हमें संसार से अलग रखे, और हमारा जीवन उसके साथ परमेश्वर में छिपा रहे; तथा हमारा जीवन आचरण अन्य लोगों के समक्ष उसकी साक्षी हो।

स्वर्गिक स्थान की तैयारी

पिता के पास वापिस जाकर हमारे लिए स्वर्गिक स्थान तैयार करने वाले प्रभु यीशु की ओर देखते रहना है। यह आनन्दपूर्ण आशा हमें आशापूर्ण जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा देती है, तथा अन्तिम शत्रु (मृत्यु) का सामना करने के दिन शान्तिपूर्ण देहावसान के लिए तैयार करती है - वह शत्रु जिस पर हमारा प्रभु विजयी हुआ, और उसके द्वारा हम भी उस शत्रु पर विजयी होंगे; और इस प्रकार आतंक का कारण बन चुकी मृत्यु हमारे लिए अनन्त आनन्द का द्वार होगी।

पुनः वापिस आनेवाला प्रभु

हाँ, उस प्रभु की ओर ही देखते रहना है जिसका एक अनिश्चित समय पर पुनः वापिस आना सुनिश्चित है, और इस वापसी की आशा व प्रत्याशा के प्रति अपनी विश्वासी कलीसिया के धैर्य, जागरूकता व आनन्द से प्रसन्न है (फिलि. 4:4, 5:1, प.थि.स. 5:23)।

विश्वास के कर्ता

हमें अपने विश्वास के कर्ता एवं सिद्ध करने वाले प्रभु यीशु पर दृष्टि लगाए रहना है। अर्थात् उस पर ही अपनी दृष्टि लगाए रहना जो हमारे विश्वास का प्रतिमान (पैटर्न, आदर्श या नमूना) एवं स्रोत है; और यहां तक कि वही हमारे विश्वास का विषय, अभिप्राय एवं लक्ष्य है। प्रारम्भिक कदम से लेकर अन्तिम चरण तक विश्वासियों के अगुवा के रूप में उनके आगे-आगे वही उनकी अगुवाई करता है ताकि उसके द्वारा हमारा विश्वास प्रेरणा प्राप्त करे, प्रोत्साहित हो, स्थिर रहे और अपनी पूर्णावस्था तक पहुंचाया जाए।

अन्य वस्तुएं

हमें अन्य किसी वस्तु की ओर नहीं, बल्कि प्रभु यीशु पर ही दृष्टि लगाए रहना है। जैसा कि इब्रा. 12:1-2 के पाठांश से स्पष्ट है, हमें अपनी दृष्टि को प्रभु यीशु मसीह पर ही स्थिर रखने के लिए इसे अन्य बहुत सी वस्तुओं से दूर रखना है।

अपने पर नहीं

अपने सोच-विचार, तर्क-वितर्क, कल्पनाओं, अभिरुचियों, झुकावों, इच्छाओं अथवा अपनी योजनाओं पर नहीं, बल्कि प्रभु यीशु पर ही अपनी दृष्टि को केन्द्रित रखना है।

संसार की ओर नहीं

हमें संसार के रीति-रिवाजों, परम्पराओं, उदाहरणों, नियमों या निर्णयों पर नहीं, बल्कि प्रभु यीशु पर ही अपना ध्यान केन्द्रित रखना है।

शैतान पर नहीं

हाँ, शैतान अपने क्रोध के द्वारा हमें डराने-धमकाने या फिर बहकाने, लुभाने व मिथ्या-प्रशंसा भरी चाटुकारिता के द्वारा हमें अपनी ओर आकर्षित करने की भरसक कोशिश कर सकता है। लेकिन प्रभु यीशु की ओर अपनी अटल दृष्टि के द्वारा तथा उसकी अगुवाई के अनुसार हर हालत में उसका अनुसरण करने के द्वारा हम अनेक निरर्थक प्रश्नों से, बेचैनी पैदा करने वाली शंकाओं से, समय की बर्बादी से, बुराई के साथ खतरनाक खेलों से, शक्ति की बर्बादी से, व्यर्थ के सपनों से, दुःखद निराशाओं व संघर्षों से तथा पतनकारी आपदाओं से बच सकते हैं। तब उसके द्वारा हमारे लिये निर्धारित पथ पर ही निरन्तर दृष्टि लगाए रहने में हम लवलीन रहेंगे और प्रभु जिस अनुपयुक्त मार्ग पर हमें नहीं ले जाना चाहता उस पर दृष्टि डाल कर एक क्षण भी बर्बाद नहीं करेंगे।

धर्म सिद्धान्त

अपने धर्म-सिद्धान्तों पर नहीं बल्कि प्रभु पर ही दृष्टि बनाए रखना है। हो सकता है आप यह कहें कि हमारे

(कलीसियाई) धर्म-सिद्धान्त बिल्कुल सुसमाचारीय (evangelical) हैं। बड़ी अच्छी बात! लेकिन उद्धार प्रदान करने वाले विश्वास, पवित्र करने वाले विश्वास और सच्ची शान्ति या सान्त्वना देने वाले विश्वास का मतलब 'उद्धार सम्बन्धी सिद्धान्तों से सहमत होना' नहीं है, बल्कि उद्धारकर्ता के साथ एकता (सहभागिता) है। प्रभु यीशु मसीह के बारे में जानना ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि उसे अपनाना आवश्यक है। तात्पर्य यह है कि जब तक कोई व्यक्ति प्रभु यीशु को आत्मसात् नहीं करता (यानि उसे अपनाता नहीं) तब तक उसे वास्तविक तौर पर नहीं जानता। प्रभु के प्रिय शिष्य यूहन्ना के गूढ़तापूर्ण कथन के अनुसार 'जीवन में ही ज्योति है', अर्थात् प्रभु यीशु में ही सच्चा जीवन है (यूहन्ना 1:4)।

मनन-चिन्तन व प्रार्थना

अपने धार्मिक वार्तालाप, हितकर अध्ययन-मनन, धार्मिक सभाओं में सहभागिता, और यहां तक कि प्रभु भोज की सहभागिता पर भी अपनी दृष्टि केन्द्रित नहीं रखना है - केवल प्रभु यीशु पर। हाँ, अनुग्रह के इन सब साधनों का विश्वासपूर्वक इस्तेमाल करते रहना है; लेकिन इन्हें ही परमेश्वर का अनुग्रह समझ बैठने की गलतफहमी में नहीं पड़ना है। बल्कि हमें अपनी दृष्टि को उसी पर लगाए

रहना है, जो इन साधनों के द्वारा अपने आप को हम पर प्रकट करते हुए इन्हें प्रभावी बनाता है।

कलीसियाई पद-पदवी

अपने पद-पदवी पर नहीं, केवल प्रभु पर दृष्टि रखें। हमें अपनी मण्डली की अपनी सदस्यता पर, अपने बपतिस्मा पर, अपनी शिक्षा व योग्यता पर, अपने धर्म-सिद्धान्तों पर, हमारे आत्मिक जीवन के बारे में दूसरों के (प्रशंसापूर्ण अथवा आलोचनापूर्ण) विचारों पर या अपने जीवन के बारे में स्वयं अपने विचारों पर भी दृष्टि नहीं लगाना है। इनके बजाय सिर्फ प्रभु यीशु पर ही अपनी दृष्टि कायम रखनी है। कई लोग, जो आजकल, प्रभु यीशु के नाम से भविष्यवाणी करने का दावा करते हैं, उन्हें एक दिन यह सुनना पड़ेगा : "मैंने तुमको कभी नहीं जाना" (मत्ती 7:22-23)। लेकिन अपने पिता एवं स्वर्गदूतों के समक्ष वह उन साधारण विश्वासियों को स्वीकार करेगा जो बड़ी दीनतापूर्वक उसी की ओर अपनी दृष्टि लगाये रहे।

अन्य विश्वासी

हाँ, अच्छे से अच्छे और सबसे प्रिय विश्वासियों पर भी नहीं, बल्कि सिर्फ प्रभु मसीह पर ही अपनी दृष्टि केन्द्रित रखें। किसी मनुष्य का अनुसरण करने में, हमें अपने मार्ग से भटकने का खतरा बना रहता है, जबकि

मसीह यीशु का अनुसरण करने से हम अपने 'मार्ग' पर ही बने रहने के प्रति पूर्णतः आश्वस्त होते हैं। इसके अलावा अपने तथा प्रभु यीशु के बीच किसी मनुष्य को स्थान देने से जाने-अनजाने धीरे-धीरे हमारी दृष्टि में उस मनुष्य का महत्व बढ़ता जायेगा और प्रभु यीशु की महत्ता घटती जाएगी। ऐसा मनुष्य जब हमें निराश करता है तो सब कुछ अन्धकारमय एवं निराशापूर्ण हो जाता है। अन्ततः हमारी हालत यह हो जाती है कि हम प्रभु यीशु को जानने-पहचानने में असमर्थ हो जाते हैं, क्योंकि वह मनुष्य हमें निराश किया जिसको हमने अनावश्यक महत्व दिया था। इसके विपरीत, जब हमारे तथा हमारे घनिष्ठ मित्र के बीच प्रभु यीशु को महत्वपूर्ण स्थान मिलता है, तब उस मित्र के प्रति हमारे सम्बन्धों में बाह्य आकर्षण की अपेक्षा आन्तरिक गम्भीरता व गहराई ज्यादा होगी, कामुकता या संवेगशीलता की अपेक्षा कोमलता, सदयता व समझदारी होगी, उससे हमारा लगाव हमारी आवश्यकता की अपेक्षा उसके हित के लिए (उपयोगी) होगा। किसी मनुष्य के साथ हमारा ऐसा सम्बन्ध परमेश्वर के हाथों में आशीष का एक साधन होता है, जिसे वह अपनी इच्छानुसार इस्तेमाल करता है। यही नहीं बल्कि ऐसे किसी मित्रवत मनुष्य की अनुपस्थिति को भी परमेश्वर हमारे लिए एक आशीष का कारण बना देता है,

क्योंकि परमेश्वर जब चाहेगा तब उसे हमसे दूर करके हमें हमारे उस एकमात्र सच्चे मित्र की और अधिक समीपता में ले जाएगा जिससे "न तो मृत्यु न जीवन" हमें अलग कर सकेगी (रोमियों 8:38-39)।

शत्रु, बाधाएं एवं परेशानियां

हमें अपनी दृष्टि को शत्रुओं पर भी नहीं लगाना है : चाहे वे हमारे शत्रु हों या प्रभु के विरोधी। ऐसा करके हम, उनसे डरने अथवा उनसे नफरत रखने के बजाय, उनसे प्रेम करना सीखेंगे।

इसके अतिरिक्त, हमें अपने रास्ते में आने वाली बाधाओं पर भी ध्यान नहीं लगाना है, इन रुकावटों की ओर ध्यान केन्द्रित करके हम बेचैनी, असमंजस व आश्चर्य को ही दावत देते हैं; क्योंकि इन बाधाओं के आने की अनुमति के कारण को तथा इन पर विजयी होने के साधन को पूर्णतः समझने में हम असमर्थ हैं। प्रभु का एक चेला पानी में तब डूबने लगा था जबकि वह अपनी दृष्टि को आंधी-तूफान से उठने वाली लहरों की ओर लगाया। इसके विपरीत जब तक वह अपनी नज़र को प्रभु की ओर लगाए रहा तब तक पानी के ऊपर ऐसे चलता रहा, मानो जैसे कि जमीन पर चल रहा हो। कोई कार्य जितना ही कठिन होता है, उसमें उतनी ही भयावह आजमाइशों की संभावना होती

है। अतएव हमारे लिए यह और भी आवश्यक हो जाता है कि हम केवल प्रभु की ओर ही दृष्टि लगाए रहें।

इस प्रकार हमें अपनी परेशानियों को गिनने, उनके बारे में चिन्ता करने अथवा दुःख-दर्द को सहने से उत्पन्न संतुष्टियों के बजाय प्रभु की ओर ही देखते रहना है। जिस दुःख-दर्द या परेशानी में प्रभु की संगति नहीं है उससे सच्ची पवित्रता के बजाय कठोरता ही विकसित होती है। ऐसी परेशानी धैर्य के बजाय विद्रोह-भावना, समझसहित सहानुभूति के बजाय स्वार्थीपन तथा आशा के बजाय निराशा को बढ़ाती है। कहने का मतलब यह है कि केवल 'मसीह के क्रूस' की छाया में ही हम अपने क्रूस के वास्तविक वजन को पहचानते हैं, और तभी इसे अपने लिए या दूसरों के लिए प्रभु की ओर से दी गई एक आशीष समझ कर प्रेम, आभार एवं आनन्द के साथ स्वीकार करते हैं।

सर्वप्रिय चीज़ या परम प्रभु

विश्वासी जन को अपनी दृष्टि प्रभु की ओर ही लगाना है न कि सर्वप्रिय वस्तु या व्यक्ति की ओर। अर्थात् बिल्कुल उचित प्रतीत होने वाले अच्छे से अच्छे इहलौकिक आनन्द या सुख-सुविधा पर भी अपना मन केन्द्रित नहीं करना चाहिए, ताकि कहीं ऐसा न हो कि इस आनन्द व सुख-सुविधा वाली प्रिय वस्तु या व्यक्ति में हमारा मन ऐसा

लग (फंस) जाए कि हम उस सच्चे दाता को भूल बैठें जिससे यह सब हमें प्राप्त होता है। यदि हमारी दृष्टि प्रमुखतः प्रभु की ओर लगी रहती है, तो हम इहलौकिक आशिषों को प्रभु की देन मानकर ग्रहण करते हैं। तब ये उत्तम चीजें हमारे लिए हजार गुना मूल्यवान हो जाती हैं, क्योंकि इन्हें हम प्रेमी परमेश्वर द्वारा दिये हुए उपहार के रूप में अपनाते हैं। ऐसा विश्वासी इन उपहारों को उनके दाता की देख-रेख में ही सौंपे रहता है ताकि उसकी संगति में उनका असली आनन्द ले, और उसी की महिमा हेतु इनका उपयोग करे।

जिस ईश्वरीय पथ पर चलने के लिए प्रभु ने हमें बुलाया है उसकी तैयारी के लिए इस्तेमाल किए गये संसाधनों पर मन नहीं लगाना है। हमें तो अपनी दृष्टि को मनुष्य से परे, परिस्थितियों से परे, अर्थात् इन सभी अप्रधान कारणों (बातों, वस्तुओं या व्यक्तियों) से परे केन्द्रित रखना है। हमें अपना मन सृष्टिकर्ता परमेश्वर की **परमप्रधान इच्छा** पर लगाए रहना है। अतः आइए हम अपने मन को उसकी परम पवित्र इच्छा के स्रोत की ओर उठाए रहें - अर्थात् परमेश्वर के प्रेम की ओर। तब एहसानमन्दी से भरा हमारा मन हमारा भला करने वाले मनुष्य मात्र पर ही स्थिर रहने के बजाय सबसे अव्याख्येय, सबसे दुःखद एवं सबसे

अप्रत्याशित परीक्षा की घड़ी में भी, भजनकार के समान यह कह सकेगा : "मैं गूंगा बन गया हूँ, और अपना मुंह नहीं खोलता, क्योंकि तू ने ही यह किया है" (भज. 39:9)। तब, ऐसे मौन दुःख-सहन करने के समय प्रभु की कोमल वाणी यह संदेश प्रदान करेगी : "मैं जो करता हूँ, तू उसे अभी नहीं समझ सकता, परन्तु तू इसके बाद समझेगा" (यूह. 13:7)।

हमें अपनी दृष्टि अपने हित, हक, लाभ, कारण, मकसद की ओर नहीं बल्कि प्रभु यीशु मसीह पर ही केन्द्रित रखनी चाहिए। हाँ, हमें अपना मन अपने दल, समूह, संस्था अथवा अपनी कलीसिया के हक, लाभ या उद्देश्य पर केन्द्रित करने के बजाय प्रभु पर ही लगाये रहना चाहिए। हमें अपने जीवन के एकमात्र लक्ष्य को नहीं भूलना चाहिए - परमेश्वर की महिमा। यदि हमारे समस्त प्रयासों का परम उद्देश्य परमेश्वर की महिमा ही नहीं है, तो हम स्वयं को उसकी सहायता के पात्र होने से वंचित रखते हैं; क्योंकि उसका अनुग्रह सिर्फ उसके महिमा की ही सेवा करता है। अपने जीवन में परमेश्वर की महिमा को ही सर्वोच्च स्थान देने वालों के लिए उसके अनुग्रह की सेवा-सहायता सदैव उपलब्ध है।

मानवीय संकल्प-सामर्थ्य

हमें अपनी दृष्टि को अपने संकल्पों, उद्देश्यों, आकांक्षाओं या पक्के इरादों पर नहीं बल्कि प्रभु परमेश्वर पर ही लगाना चाहिए। अनेक बार हमारे सर्वोत्तम उद्देश्य या इरादे सिर्फ अपमान-जनक पतन का मार्ग ही बनाते हैं। अतः हमारी सच्ची, स्थायी एवं आध्यात्मिक भलाई इसी में है कि हम अपना मन अपने इरादों, उद्देश्यों अथवा संकल्पों पर नहीं, बल्कि प्रभु परमेश्वर के प्रेम और उसके वायदों पर लगाए रहें। हाँ, अपनी सामर्थ्य पर नहीं, केवल प्रभु की सामर्थ्य पर भरोसा रखें। क्योंकि हमारी शक्ति सिर्फ अपने आप की महिमा करने में समर्थ है। परमप्रधान परमेश्वर की महिमा के लिए जीवन व्यतीत करने हेतु प्रभु परमेश्वर द्वारा दी गई सामर्थ्य आवश्यक है।

इसके साथ ही साथ, हमें अपनी दुर्बलताओं की ओर देखते रहने के बजाय, प्रभु यीशु मसीह की ओर ही देखते रहना है। क्या हम अपनी दुर्बलताओं पर ही ध्यान लगाने से और अधिक सबल होंगे? बेहतर तो यही है कि हम अपनी नज़र प्रभु यीशु की ओर ही लगाए रहें, और उसकी सामर्थ्य का अपने जीवन में संचार होने दें। इस प्रकार हमारे होठों से उसकी स्तुति-प्रशंसा प्रस्फुटित होने लगेगी।

विश्वासी जन को पापों पर, पाप के स्रोत पर (मत्ती 15:19) अथवा पापों के लिए मिलने वाली ताड़ना पर अपनी दृष्टि केन्द्रित नहीं करना है। स्वयं की ओर सिर्फ यह जानने-पहचानने के लिए दृष्टि डालना है कि प्रभु की ओर निरन्तर दृष्टि लगाए रहना हमारे लिए कितना अधिक ज़रूरी है। हाँ, प्रभु की ओर दृष्टि लगाना अत्यावश्यक है, लेकिन स्वयं को बेकसूर या बेदाग़ मान कर नहीं। इसके विपरीत, चूंकि हम पापी हैं, इसलिए हमें अपने घोर अपराध की तुलना उस महानतम् बलिदान एवं अनुग्रह से करनी है जिसमें इसका प्रायश्चित व क्षमा-दान है। परमेश्वर के एक सेवक श्री मैक चेनी के अनुसार "स्वयं की ओर एक बार दृष्टि डालने पर प्रभु की ओर दस बार दृष्टि डालनी चाहिए" (Mc Cheyne)। प्रभु के एक अन्य दास श्री विनेट के अनुसार, "यदि हम यह कहते हैं कि क्रूसित मसीह की ओर दृष्टि लगाए रहने से हमारी अधम अवस्था पर से हमारी दृष्टि दूर हो जाती है; ...तो यह भी निश्चित है कि अपनी अधम अवस्था पर ही निरन्तर नज़र लगाए रहने से हमारी दृष्टि प्रभु यीशु से दूर हो सकती है... बेशक, अपनी ओर देखिए, लेकिन क्रूस रूपी दर्पण द्वारा, अर्थात् केवल प्रभु यीशु मसीह के द्वारा" (Vinet)। पाप की ओर देखते रहने का परिणाम मृत्यु है, परन्तु प्रभु यीशु मसीह की ओर दृष्टि रखने का परिणाम जीवन है।

स्वधर्मिता, स्व-प्रयास एवं सेवा-सफलता रूपी छलावा

सबसे बड़े रोगी कौन हैं? वे जो यह सोचते हैं कि वे निरोग हैं। अर्थात् ऐसे लोग जो इस बात का गर्व करते हैं कि उन्हें सब कुछ पूर्णतः दिखायी देता है, जब कि वास्तविकता यह है कि वे भी एक प्रकार के 'अन्धेपन' से ग्रसित हैं (यूहन्ना 9:41)। यदि विश्वासी जन के लिए अपने पापीपन (आदम स्वभाव) पर ही दृष्टि लगाए रहना खतरनाक है, तो ख्याली खूबियों वाली आत्म-तृप्ति (झूठी आत्मिक तृप्ति) और भी अधिक खतरनाक है। अतः अपनी बनावटी धार्मिकता की ओर नज़र लगाए रहने के बजाय प्रभु यीशु मसीह की ओर दृष्टि लगाना ही सबसे बेहतर है।

व्यवस्था और अनुग्रह

व्यवस्था अपनी आज्ञाओं का पालन चाहती है, लेकिन अपनी आज्ञाओं के पालन हेतु आवश्यक सामर्थ्य नहीं देती। व्यवस्था सदैव दोष लगाती है, क्षमा नहीं देती। यदि हम स्वयं को पुनः व्यवस्था के अधीन करते हैं, तो अनुग्रह से दूर जाते हैं। व्यवस्था के प्रति अपनी आज्ञाकारिता को अपने उद्धार-प्राप्ति का साधन मानना सच्ची आत्मिक शांति, मेलमिलाप, आनन्द एवं सामर्थ्य से दूर होना है; क्योंकि ऐसा जन इस सच्चाई को भूल गया है कि "हर एक विश्वास करने वाले के लिए धार्मिकता के निमित्त मसीह

व्यवस्था का अन्त है" (रोमियों 10:4)। और व्यवस्था के बोझ, दबाव एवं दोषारोपण से विवश हो कर जब हम मसीह यीशु को अपना एकमात्र उद्धारकर्ता मानने लगते हैं; तब सिर्फ मसीह यीशु ही हमें अपना आज्ञाकारी बनाने का हक़दार होता है। अर्थात् उसके प्रति सम्पूर्ण हृदय, सम्पूर्ण आत्मा एवं सम्पूर्ण मन से आज्ञाकारिता - ऐसी आज्ञाकारिता जो भारी बोझ समान नहीं बल्कि सहज व हल्की होती है (मत्ती 11:30)। इस आज्ञाकारिता को हमारा प्रभु यीशु आनन्दपूर्ण एवं आवश्यक बनाता है। हाँ, वही इसके महत्व को दर्शाता है और वही इसकी प्रेरणा प्रदान करता है। यह आज्ञाकारिता हमारे उद्धार का एक अंग है - और शेष सभी आशिषों के समान, परमेश्वर-प्रदत्त एक उपहार है।

सेवा-कार्य और प्रभु

हमें अपना मन प्रभु के लिए किये जाने वाले अपने कामों की ओर नहीं, बल्कि प्रभु परमेश्वर की ओर ही लगाना चाहिए। कामों की अत्यधिक व्यस्तता में प्रभु को हम भूल सकते हैं। हाथों का व्यस्त होना और हृदय बिल्कुल रिक्त रहना, कोई असम्भव बात नहीं है। इसकें विपरीत जब हमारा मन अपने सच्चे मालिक की ओर लगा रहता है तो हम अपने कार्य (दायित्व) की अनदेखी नहीं करते। प्रभु-प्रेम से भरपूर हृदय प्रभु की सेवा में सक्रिय रहने से जी नहीं चुराता।

सफलता और प्रभु

वास्तविक सफलता का पैमाना, दृश्यमान या आभासी सफलता नहीं है। इसके अतिरिक्त, प्रभु परमेश्वर ने हमें (सेवा) कार्य करने का आदेश दिया है; न कि सफलता प्राप्त करने का। वह हमारे कार्य का हिसाब चाहता है, न कि हमारी सफलताओं का। तो फिर सफल होने की चिंता से क्यों दबे रहना? हमारी जिम्मेदारी सिर्फ बीज बोना है - फल बटोरने वाला परमेश्वर है। यदि आज नहीं, तो भविष्य में वह अपना काम पूर्ण करेगा। यदि वह अपने इस कार्य (कटनी या फल बटोरने) के लिए हमें इस्तेमाल नहीं करता, तो अन्य लोगों का उपयोग करेगा। यदि हम सफल होते भी हैं तब भी सफलता पर अपना ध्यान केन्द्रित करना खतरनाक है। क्योंकि प्रायः हम इस सफलता का कुछ न कुछ श्रेय स्वयं को देने के प्रलोभन में पड़ जाते हैं; और इस प्रकार हम अपनी प्रतिक्रिया के परिणाम की अनदेखी करते हुए, अपने कार्य-उत्साह व सतर्कता में उस वक्त ढिलाई कर देते हैं, जब कि हमें दुगुनी शक्ति व सावधानी के साथ कार्य करना चाहिए। सफलता पर दृष्टि लगाना, दिखायी देने वाली वस्तुओं (या प्रत्यक्ष) के सहारे जीना (यानि उन्हीं पर मन लगाना) है। परन्तु समस्याओं एवं निराशाओं के बावजूद, सिर्फ प्रभु यीशु की ओर दृष्टि लगाए

रहना, धैर्यपूर्वक उसके पीछे चलते रहना और उसकी सेवा करते रहना विश्वास के सहारे जीना है (दू. कुरि. 5:7)।

आत्मिक वरदान और प्रभु

प्रभु परमेश्वर से हमें प्राप्त हो चुके अथवा उससे प्राप्त हो रहे आत्मिक वरदानों की ओर मन लगाने के बजाय प्रभु यीशु मसीह पर ही अपना मन लगाना चाहिए। कल जो अनुग्रह मिला था वह कल के कार्य के साथ चला गया। अब हम उसका उपयोग नहीं कर सकते, और न ही हमें उसके लिए ठहरना चाहिए। आज का अनुग्रह, आज के कार्य के लिए प्रदान किया गया है। यह हमारे इस्तेमाल के लिए हमें सौंपा गया है, न कि हमारे निहारने के लिए। हमें यह इसलिए नहीं दिया गया है कि लालसा भरी नज़र से इसको निहारते व गिनते रहें; बल्कि इस अनुग्रह का फौरन सदुपयोग करके इसे खर्च कर देना है, ताकि हम अपनी आत्मिक आवश्यकता में 'प्रभु यीशु की ओर' ही देखते रहें।

हमारे पापों के कारण हमें जिस शोक या दीनता का अनुभव होता है, उस पर भी हमें अपना मन नहीं लगाना चाहिए। यदि इस प्रकार के दुःख, दर्द व दीनता की मात्रा उतनी ही है जिससे हम में आत्म-तृप्ति (रूपी लापरवाही, निश्चिंतता या असावधानी) की भावना को

बढ़ावा नहीं मिलता; और हम प्रभु यीशु मसीह की ओर ही दृष्टि लगाने के लिए विवश होते हैं, ताकि वह हमें इनसे मुक्त करे; तो यह प्रभु की इच्छा के अनुसार है। प्रभु की ओर ऐसी दृष्टि रखने से ही हमारा अहंकार दूर होता है, और हमारे आंसू आनन्दमय हो जाते हैं। हाँ, हमारी आध्यात्मिक भलाई तो इसी में है कि पतरस की तरह (लूका 22:62) 'फूट-फूट कर रोने' का मौका आने पर भी (आंसुओं से भीगी) हमारी आंखें प्रभु यीशु की ओर ही देखती रहें। क्योंकि हमारा पश्चाताप भी हमारे लिए एक फन्दा बन सकता है - यदि हम यह सोचते हैं कि उन पापों को हमारा पश्चाताप धो सकता है, जिन्हें केवल 'परमेश्वर के मेमने' का लहू ही धो सकता है।

महसूसियत

अपने आनन्द की चमक, अपने निश्चयता की सामर्थ्य, या अपने प्रेम की प्रेरणा पर ध्यान लगाने के बजाय हमें प्रभु परमेश्वर की ओर ही अपनी दृष्टि बनाए रखना है। यदि हम ऐसा नहीं करते तो चाहे हमारे अविश्वास के कारण या हमारे विश्वास की परख के कारण, जब थोड़े समय के लिए भी हमारा प्रेम ठंडा होगा, तब हमारी निश्चयता चली जाएगी, अथवा हमारा आनन्द हमारे पास नहीं होगा, तब अपनी महसूसियत के अभाव में हम इस सोच के शिकार

होने लगेंगे कि अब हमारे विश्वास की शक्ति समाप्त हो गई है। ऐसा मसीही अपने आप को शोक की गर्त, कायरतापूर्ण निष्क्रियता, और पापपूर्ण कुड़कुड़ाहट की ओर लुढ़कने देता है। परन्तु हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि मीठी महसूसियतों (feelings) के अभाव में भी (मसीह के) विश्वास की सामर्थ्य हमारे साथ रहती है। अतः "प्रभु के कार्य में सर्वदा बढ़ते" रहने के लिए हमें अपने चंचल मन की ओर नहीं, बल्कि उस प्रभु की ओर ही देखते रहना है, जो सदैव एक सा है (प. कुरि. 15:58)।

दुर्बलताएं, पवित्रता, विजय व पराजय

पवित्रता की जिन ऊंचाइयों तक हम पहुंचे हैं, उन पर दृष्टि लगाने के बजाय प्रभु यीशु की ओर ही देखते रहना हितकर है। अगर कोई विश्वासी जन अपने जीवन में पाप के दाग या लड़खड़ाहट को पाकर यह सोचता है कि वह परमेश्वर की सन्तान नहीं हो सकता, तो उद्धार के आनन्द का स्वाद कौन चख सकता है? परन्तु वास्तविकता यह है कि इस आनन्द को दाम देकर खरीदा नहीं जा सकता। हमारी पवित्रता, हमारे छुटकारे की जड़ (आधार) नहीं, इसका फल है। यह हमारे निमित्त मसीह यीशु द्वारा किया गया कार्य है, जिससे परमेश्वर के साथ हमारा मेलमिलाप हो जाता है। यह हमारे जीवन में पवित्र आत्मा

का कार्य है जो हमें प्रभु के स्वभाव (स्वरूप) में नया करता जाता है। हमारे मुक्तिदाता यीशु मसीह द्वारा पूर्ण किये गये उद्धार-कार्य की भरपूरी को उस विश्वास की खामियां नहीं रोक सकतीं, जो विश्वास सच्चा तो है, लेकिन अभी पूर्ण सुदृढ़ या विकसित नहीं है और जिसमें अभी फल भी कम ही लगते हैं। अपने विश्वासियों को अनन्त जीवन प्रदान करने वाले प्रभु के अटल वायदे पर भी सच्चे विश्वास की खामियों का असर नहीं पड़ता। अतः मुक्तिदाता में विश्वास रूपी विश्राम ही उसके प्रति आज्ञाकारिता का सही तरीका है। इस प्रकार जब हमारी आत्मा क्षमा-प्राप्ति की शान्ति का आनन्द लेना सीखती है तो आत्मिक मल्लयुद्ध के लिए सशक्त होती है। लेकिन यदि कोई व्यक्ति इस धन्य सच्चाई का गलत अर्थ लगाकर निर्लज्जता व लापरवाही के द्वारा आत्मिक निष्क्रियता (सुस्ती) दर्शाता है, और इस सोच का शिकार बनता है कि उसका अपूर्ण विश्वास (अप्राप्त) पवित्रता का स्थान ले सकता है; तो उसे पवित्रशास्त्र की इन गम्भीर बातों पर ध्यान देना चाहिए : "जो मसीह यीशु के हैं, उन्होंने शरीर को उसकी वासनाओं और इच्छाओं सहित क्रूस पर चढ़ा दिया है। ...जो कोई यह कहता है, 'मैं उसे जान गया हूँ,' और उसकी आज्ञाओं को नहीं मानता, वह झूठा है और उसमें सत्य नहीं है। ...जो पेड़ अच्छा फल

नहीं देता वह काटा और आग में डाला जाता है" (गला. 5:24; प. यूह. 2:4; मत्ती 7:19)।

यदि हमारी नज़र हमारी पराजय पर होगी, तो हम हताश होंगे, और यदि हमारा मन हमारी विजय पर लगा रहेगा, तो हम अहंकार से फूलने लगेंगे। ऐसी दशा में इन दोनों में से कोई भी "विश्वास की अच्छी कुश्ती" अर्थात् हमारे आत्मिक संघर्ष में सहायक नहीं हो सकता। विजयी बनाने वाले विश्वास के साथ, आत्मिक विजय भी, अन्य सभी आत्मिक आशिषों की भांति खीष्त यीशु के द्वारा प्राप्त ईश्वरीय वरदान है। और इसके लिए सारी महिमा व आदर प्रभु परमेश्वर को ही मिलता है (प. तीमु. 6:12; प. कुरि. 15:57)।

हमारी आध्यात्मिक भलाई इसी में है कि हम अपनी शंकाओं (doubts) के बजाय प्रभु यीशु मसीह की ओर ही देखते रहें। हम अपनी शंकाओं पर जितना अधिक ध्यान देंगे वे उतनी ही अधिक विशाल प्रतीत होंगी और हमारे विश्वास, हियाव एवं आनन्द का अहित करेंगी। इसके विपरीत, यदि हम अपनी ओर से मुंह मोड़ कर अपने प्रभु यीशु की ओर मन लगाएंगे, तो उस एकमात्र सत्य के प्रकाश में शंका रूपी बादल छंटते जाएंगे (यूहन्ना 14:6)।

हमारी दृष्टि को, प्रभु से दूर, दूसरी चीजों की ओर आकर्षित करने में असफल होने पर, शैतान हमारे मन को हमारे उद्धारकर्ता पर से हटा कर हमारे अपने विश्वास पर केन्द्रित कराता है; ताकि यदि हमारा विश्वास दुर्बल है तो हमें निराश करे और यदि हमारा विश्वास मजबूत है तो हमें अहंकार से भरे - किसी भी तरीके से हमें कमज़ोर करना। हमें यह स्मरण रखने की आवश्यकता है कि हमारी सामर्थ्य हमारे विश्वास से नहीं मिलती बल्कि विश्वास के द्वारा हमारे उद्धारकर्ता से मिलती है। हाँ, यह आध्यात्मिक शक्ति अपनी (दृष्टि की) ओर देखने से नहीं, बल्कि "यीशु की ओर" ताकते रहने से मिलती है।

केवल अपने उद्धारकर्ता परमेश्वर की ओर देखते रहने से ही हम सच्चा ज्ञान प्राप्त करना सीखते हैं। ऐसा ज्ञान जो हमारी आत्मा की भलाई के लिए हितकर है। संसार के बारे में, अपने आप के बारे में, अपने दुःख व खतरों के बारे में, अपने संसाधनों एवं सफलताओं के बारे में - सब बातों को उनके सही प्रकाश में देखना, क्योंकि दिखलाने वाला प्रभु परमेश्वर होता है। जब प्रभु परमेश्वर की ओर से यह ज्ञान सिखाया जाता है तो उस गति, समय एवं अनुपात में ज्ञान-प्रकाश प्रदान किया जाता है जिससे हमारे जीवन में दीनता, सद्बुद्धि, एहसानमन्दी, हियाव, सतर्कता एवं

प्रार्थना रूपी फल विकसित होते हैं। हमारी जानकारी के लिए आवश्यक आत्मिक ज्ञान को प्रभु यीशु हमें अवश्य सिखलाएगा। परन्तु जो कुछ हम उससे नहीं सीखते, ऐसे गुण व ज्ञान से अपरिचित रहना ही बेहतर होगा। अतः बीते हुए समय की स्मृतियों तथा भविष्य के अज्ञात दिनों की चिन्ताओं में उलझे रहने के बजाय, जब तक हम इस धरती पर हैं तब तक, क्षण प्रतिक्षण "विश्वास के कर्ता और सिद्ध करने वाले प्रभु यीशु की ओर अपनी दृष्टि लगाए रहें" - एक नयी, ताजी, सतत्, सुदृढ़, आशा एवं भरोसा भरी दृष्टि से। इसके परिणाम स्वरूप 'हम अंश-अंश करके प्रभु के स्वभाव में बदलते जाते हैं,' और इस प्रकार उस पहर की प्रतीक्षा करते है जब वह हमें इस धरती से स्वर्ग में और समय की सीमा से पार शाश्वत काल में प्रवेश हेतु बुलाएगा। वह प्रतिज्ञात् दिन कितना धन्य होगा जब कि अन्ततः "हम उसके सदृश होंगे, क्योंकि हम उसको ठीक वैसा ही देखेंगे जैसा वह है"।

FBC
Winchester
2001